राजस्थान के समाज वैज्ञानिकों हेतु शोध एजेंडा का निर्माण

संजय लोढ़ा

राजस्थान के समाज की इंद्रधनुषी प्रकृति शोधार्थियों, विकास अध्ययनकर्ताओं, विद्वानों और पत्रकारों के अध्ययन का केंद्रबिंदु रही है। पत्रकारों द्वारा किए गए अध्ययन राज्य के समसामयिक इतिहास के बारे में तथ्यात्मक जानकारी हेतु उपयोगी स्रोत हैं। सामाजिकृत वैज्ञानिकों द्वारा राजस्थानी समाज के विशिष्ट आयामों के अध्ययन की भी एक समृद्ध परंपरा रही है। इस श्रेणी में बी.आर. चौहान, एस.एल. दोषी और एन.एल. व्यास जैसे विद्वानों द्वारा किए गए अध्ययनों को रखा जा सकता है। ग्रामीण जीवन के नृजातिय अध्ययन संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारी उन विद्वानों द्वारा दी गई है। विकास संबंधी विश्लेषणकर्ताओं के द्वारा राज्य की विकास समस्याओं का सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन किया गया है जिनका उचित उपयोग नीति निर्माताओं और राजनीतिक वर्ग द्वारा

किया गया है। राज्य की राजधानी में विगत कुछ समय में जो शोध केंद्र अवतरित हुए हैं वो इसी विकासवादी पीठ से जुड़े हैं जिनका संबंध विकास अध्ययन केन्द्र (IDS) से रहा है। लेकिन अध्ययन की इस परंपरा द्वारा किए गए विश्लेषणों की मुख्य कमजोरी यह है कि अधिकांशत इनका संबंध आर्थिक मुद्दों से है और यह अत्यंत सूक्ष्म है। उनमें से अनेक शोध केंद्र सेवानिवृत्त प्रशासकों के द्वारा स्थापित किए गए हैं और उनमें अकादमिक श्रेष्ठता का अभाव है। और वे आर्थिक सहायकों के एजेण्डा द्वारा संचालित होते हैं। यह भी देखा गया है कि गैर-सरकारी क्षेत्र के संगठन की विकास अध्ययन पीठ से जुड़े हुए हैं।

पिछली कुछ दशाब्दियों में राज्य में सभ्य समाज संगठनों में बहुत वृद्धि हुई है जो विभिन्न प्रसंगों पर काम कर रहे हैं। उन संगठनों के द्वारा किए गए शोध और उनके प्रतिवेदन भी राज्य को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत है। लेकिन यदि अकादमिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो उन अध्ययनों में शोध प्रविधिगत अक्षमताएं हैं और भौगोलिक रूप से भी ये अखण्डित हैं। विगत कुछ समय में एक अध्ययन जिसे बहुत ध्यान से देखा जा रहा है वह एक पूर्व प्रशासक के द्वारा किया गया है, जिसमें अकादमिक समुदाय की सदस्यता बखूबी प्राप्त की है। श्रेष्ठ अकादमिक और शोध संबंधित पद्धतियों का अनुसरण करते हुए अनिरुद्ध कृष्ण ने राजस्थान के सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य का उपयोगी विश्लेषण किया है। कृष्ण ने गांवों के बीच विषम विकास का कारण मध्यस्थ के रूप में एक अभिकरण की उपस्थिति या अनुपस्थिति को बताते हुए यह कहा कि लोगों को एकजुट करने में या सेवाओं के वितरण में मध्यस्थों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। लेकिन संपूर्ण राज्य की समझ हासिल करने के लिए यह विश्लेषण अपर्याप्त है।

वृहत स्तर पर दो विश्लेषणों को यहां उद्धृत किया जाना चाहिए। इकबाल नारायण और पी.सी. माथुर ने राजस्थान में सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर राजपूत/क्षत्रिय प्रारूप का उल्लेख किया। कालांतर में अनेक पाश्चात्य विश्लेषकों ने उस परंपरा को आगे बढ़ाया। रूडोल्फ दंपती, राबेजेकिंस, लॉडरिक जैसे विश्लेषकों का मानना है कि राजपूत प्रारूप आज भी राज्य के सामाजिक परिदृश्य और राजव्यवस्था को निर्देशित करता है। इसके विपरित एक अन्य विश्लेषण के.एल. शर्मा, आनंद चक्रवृति और रिचर्डसिसन जैसे विद्वानों द्वारा दिया गया है, जो यह मानते हैं कि लोकतांत्रिक कल्याणकारी राज्य के परिणाम स्वरूप मध्यवृत्ति जातियों का उदय हुआ तो लोकनीति (CSDS) समूह द्वारा 1996 के बाद किए गए चुनाव त्यवतार के अध्ययनों के द्वारा इस विश्लेषण को अनुभवात्मक आधार प्रदान किया गया है। लोकसभा और विधानसभा चुनावों के सर्वेसनात्मक अध्ययनों द्वारा लोक नीति समूह ने यह स्थापित किया है कि मतदाता क्यों और कैसे अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं। इन वृहत अध्ययनों के परिणामस्वरूप राजस्थान के समाज के अध्ययनकर्ताओं के समक्ष एक अकादमिक आधार तैयार हुआ है, जिसे और मजबूत किया जाना चाहिए। 1950, 1960 और 1970 के दशकों में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से राजस्थान के बारे में उपयोगी अध्ययन हुए, 1980 का दशक अकादमिक दृष्टि से अपर्याप्त था। लेकिन 1990 के दशक के बाद समाज वैज्ञानिक शोध की परंपरा का आंशिक पुनरुत्थान हुआ है। इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

शोध एजेण्डा की विषय सूची

उपरोक्त अकादमिक परंपराओं को सूचीबद्ध करने के पश्चात् उन संस्थाओं और प्रक्रियाओं को चिह्नित करना आवश्यक हो जाता है जिनके बारे में व्यवस्थित रूप से अन्वेषण किया जाना चाहिए। संस्थाओं को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है : राज्य और गैर-राज्य एक अत्यंत सामंतवादी और श्रेणीबद्ध समाज में लोकतांत्रिक कल्याणकारी गणतांत्रिक राज्य की स्थापना क्रांतिकारी परिवर्तन था। स्वाधीनता और देशी रियासतों के एकीकरण के पश्चात् आधुनिक विकासवादी राज्य, न्याय और समता के मूल्य को

स्थापित करने वाला प्रमुख यंत्र बना। राज्य के द्वारा संसाधनों के पूर्ण वितरण के प्रयासों को सामंतवादी शक्तियों द्वारा कठिन चुनौती दी गई थी। प्रतिस्पर्धी लोकतांत्रिक राजनीति के कारण आधुनिकतावादी शक्तियों को पूर्व कालीन रजवाड़ी ताकतों के साथ समय-समय पर समझौते करने पड़े जिसके कारण न्यायपूर्ण समतावादी समाज के अभियान को ठेस पहुंची। वस्तुओं और सेवाओं की एकमात्र वितरणकर्ता के रूप में राज्य के प्रभुत्व की स्थापना में समय लगा। लेकिन राज्य की सत्ता का समय-समय पर डर का प्रयोग हुआ और व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए संवैधानिक मूल्यों को पूरा करने के मार्ग में बाधाएं उत्पन्न हुई। शक्ति और संसाधनों के अनियंत्रित स्वामित्व ने राजनीतिक नेतृत्व और नौकरशाही समुदाय को भ्रष्ट बना दिया। एक ऐसे समाज में जो मौन संस्कृति पर आधारित था और एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था में जो गोपनीयता की संस्कृति पर आधारित थी, शक्ति का डर उपयोग चर्चा का विषय तो बना लेकिन अवलोकन का नहीं। अतः आवश्यक है कि राज्य के इस स्वरूप का शोधकर्ताओं द्वारा अध्ययन किया जाना चाहिए।

गैर राज्य अभिकर्ता के रूप में राजनीतिक दलों की कार्यप्रणाली और उनका बदलता सामाजिक समर्थन आधार शोधकर्ताओं के लिए चुनौती है। प्रारंभिक कुछ दशकों में खंडित विपक्ष के परिणामस्वरूप कांग्रेस राजनीतिक सत्ता की मुख्य धुरी बनी रही जिसे रजनी कोठारी ने 'कांग्रेस सिस्टम' कहा। लेकिन उत्तरी भारत के अन्य राज्यों से अलग राजस्थान की राजनीति में कांग्रेस का तृणमूल स्तर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं था। प्रतिस्पर्धी चुनावी राजनीति और समाजवादी सुधारों के कारण मध्यवर्ती जातीय समूहों का प्रभाव हुआ जिन्होंने सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर स्थापित दबंग स्वर्ण जातियों को चुनौती दी। परिणामस्वरूप राजनीतिक मंच को बड़ा करके मनोदित सामाजिक समूहों के लिए स्थान बनाए गए। 1970 और 1980 के दशक में राज्य के विभिन्न भागों में मध्यवर्ती जातियों का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय के पश्चात् हम यह पाते हैं कि राज्य में दो प्रकार की सामाजिक ताकतों का उदय हुआ है : दक्षिणपंथी पुनरुत्थान-वादी और मातवृत्त (Subalterns)। 1990 के बाद समय-समय पर दक्षिणपंथी राजनीतिक दल राज्य में सत्तासीन हुए हैं लेकिन राजनीतिक एकता के अभाव में मातवृत्त समूह दो प्रमुख राजनीतिक समूह कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी के बीच विभाजित हो गए हैं। चुनावी विश्लेषकों का यह मानना है कि राज्य में राजनीतिक शक्ति के इन दो दलों के बीच नियमित रूप से अदला-बदली होती रहेगी। राज्य से संबंधित किसी भी शोध एजेंडा में राजनीतिक समाजशास्त्र के अंतर्गत शक्ति संघर्ष की श्यात्मकता और सामाजिक अभियांत्रिकी का अध्ययन प्रमुख स्थान पर रहना चाहिए।

शोध के दृष्टिकोण से उन सामाजिक और सभ्य समाज के समूहों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिनके द्वारा समय-समय पर नागरिकों को पहचान और हित के आधार पर एकजुट किया गया। पहचान की राजनीति के परिणामस्वरूप राज्य में आरक्षण हेतु अनेक आंदोलन हुए हैं। लेकिन यह आंदोलन तत्कालीन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किए गए क्षणिक प्रयास रहे हैं। उन आंदोलनों का प्रतिस्पर्धी राजनीति में संस्थानीकरण नहीं हो पाया है। उसी तरह स्थानीय स्तर पर परंपरागत सामाजिक संस्थाओं द्वारा संघर्ष निवारण और सामाजिक एकजुटता हेतु प्रयास किए गए हैं। इन दोनों ही प्रकार के गैर राज्य अभिकर्ताओं का समाज विज्ञान के शोधकर्ताओं के द्वारा न्याय नहीं किया गया है। दूसरी ओर बुनियादी आवश्यकताओं और सुविधाओं के वितरण हेतु किए गए प्रयासों का महत्त्व पहचान आधारित आंदोलनों से अधिक बताया जा सकता है। इन आंदोलनों को जीवंत सभ्य समाज के समूहों द्वारा किया गया है जिन्होंने राष्ट्रीय मीडिया, उच्च पदों पर स्थित नौकरशाहों और अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ सार्थक तालमेल स्थापित किया है। इनके आंदोलनों के परिणामस्वरूप पारदर्शिता, प्राथमिक शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और खाद्य सुरक्षा को लेकर महत्त्वपूर्ण विधेयक और योजनाएं पारित किए गए हैं। इन आंदोलनों की सफलता ने यह सिद्ध किया है कि अपार जनसमर्थन के अभाव में भी प्रभावी

दबाव और लॉबिंग के द्वारा शासन को जनोन्मुखी बनाया जा सकता है। सामाजिक अनुसंधानकर्ताओं द्वारा ऐसे आंदोलनों की प्रकृति और प्रभाव का अध्ययन किया जाना चाहिए।

संस्थाओं के अलावा आकस्मिक समुदाय के द्वारा कतिपय प्रक्रियाओं का भी अध्ययन आवश्यक है। ये प्रक्रियाएं राज्य के नेतृत्व में किए गए विकास का परिणाम हैं। भूमि सुधार, साक्षरता और शिक्षा का विकास, आधारभूत ढांचे की वृद्धि और आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप आर्थिक वृद्धि तो हुई है, पर साथ ही साथ अंतरसामाजिक और अंतर-क्षेत्रीय असंतुलन भी पैदा हुआ है। यद्यपि सामाजिक-आर्थिक विभाजन और तीव्र हुआ है फिर भी बढ़ती हुई आर्थिक विषमता के परिणामस्वरूप प्रभावी श्रमिक या कृषक आंदोलन नहीं हो पाए तो राज्य में प्रगतिशील वामपंथी ताकतों का अवमूल्यन होता जा रहा है। दूसरी ओर राज्य धार्मिक पुनरुत्थानवादी ताकतों का उपजाऊ क्षेत्र बन गया है। जिनसे वर्गीय समीकरण महत्त्वहीन होते जा रहे हैं।

एक अन्य प्रसंग जिस पर शोध की आवश्यकता है वह है राजस्थान का एक क्षेत्रीय इकाई के रूप में प्रार्दुभाव। समाज वैज्ञानिकों को राज्य स्थित समाज की बहुत और विविध प्रकृति को समझ जाना चाहिए। पूर्व रियासती क्षेत्रों में आज भी उपक्षेत्रवार स्थानीय लोगों के लिए एक महत्त्वपूर्ण भावनात्मक आधार है। लेकिन ऐसी भावना के कारण कोई क्षेत्रीय आंदोलन विकसित नहीं हुए हैं। ऐसे विरोधाभासों के उपयुक्त समाज वैज्ञानिक स्पष्टीकरण ढूंढ़े जाने चाहिए।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिनका राजस्थान के संदर्भ में अन्वेषण किया जाना चाहिए। राजस्थान का राज्य और समाज शोध की दृष्टि से अन्वेषण का अभाव है। कुछ प्रारंभिक अध्ययनों के पश्चात् समाज विज्ञान के क्षेत्र में राज्य में विशेष कार्य नहीं हुआ है। इस अपर्याप्तता के लिए कुछ कारणों का चिह्नित किया जा सकता है, जैसे प्रशिक्षित मानव संसाधन का अभाव, शोध और उच्च शिक्षण संस्थाओं में आधारभूत ढांचे की कमी। राज्य द्वारा सामाजिक शोध की अनदेखी, ज्ञान का विभाजन, शोधकर्ताओं और आकस्मिक समुदाय की अनइच्छा और सीमित ज्ञान/शोध संस्थाओं और विश्वविद्यालय के विद्वानों की पूर्व रचना और पुनः विकास की ज्वलंत आवश्यकता है। शोधकर्ताओं के समता संवर्धन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। उसके लिए पर्याप्त संस्थागत समर्थन जरूरी है और साथ ही आकस्मिक समुदाय को अधिक जवाबदेही बनाना नितांत आवश्यक है। प्रश्न यह है कि क्या हम इस चुनौती का सामना करने के लिए तैयार हैं।

साभार : राजस्थान जर्नल ऑफ सोश्योलॉजी